|| श्रीहरि: ||
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्‌गुरुम् ||

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 9: राजविद्याराजगुह्ययोग

2/3 (श्लोक 10-19), रविवार, 15 दिसंबर 2024

विवेचक: गीता विशारद डॉ आशू जी गोयल

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/bsS2pobEBc8

ईश्वर सर्वत्र व्याप्त हैं

सुमधुर प्रार्थना, दीप प्रज्वलन, हनुमान चालीसा पाठ तथा गुरु-वन्दना के साथ आज के सत्र का आरम्भ हुआ।

श्रीभगवान की अतिशय मङ्गलमय कृपा से हमारा ऐसा सद्भाग्य जागृत हुआ कि हम अपने जीवन को सार्थक करने के लिए, सुफल करने के लिए, इस जीवन का सच्चा उद्देश्य प्राप्त करने के लिए तथा इस जीवन को पूर्ण लक्ष्य तक पहुँचाने के लिए श्रीमद्भगवद्गीता के चिन्तन-मनन, पठन-पाठन, उसके उच्चारण को सीखने, उसके अर्थ को जानने, उसके सूत्रों को समझने तथा जीवन में अपनाने में प्रवृत्त हो गए।

पता नहीं कोई पूर्वजन्म के सुकृत हैं या फिर किसी जन्म में किसी सन्त महापुरुष की कृपादृष्टि हम पर हो गई, उस कारण हमारा ऐसा भाग्योदय हो गया जो हम श्रीमद्भगवद्गीता जी के पठन-पाठन में लग गए। हम सबको यह परम विश्वास होना चाहिए कि हमने गीताजी को नहीं चुना है, बल्कि हम गीताजी को पढ़ने के लिए चुने गए हैं।

श्रीमद्भगवद्गीता जी जैसा परम कल्याणकारी, सुगम व सहज उपलब्ध दूसरा कोई ग्रन्थ मानवजाति के लिए नहीं है इसलिए हम लोगों को जितनी अधिक तत्परता से हो सके, उतनी अधिक तत्परता से श्रीमद्भगवद्गीता के अध्ययन में लग जाना चाहिए।

आज हम नौवें अध्याय का चिन्तन देख रहे हैं। यह अत्यन्त गूढ़ अध्याय है। पिछले सत्र में हमने देखा था कि यह कितना उलझाने वाला है?

श्रीभगवान कहते हैं कि "**सभी प्राणियों की उत्पत्ति का कारण मैं हूँ लेकिन न वे मुझ में हैं, न मैं उनमें हूँ।**"

हमें इस अध्याय में इस प्रकार की बहुत सारी उलझने-उलझाने वाली बातें देखने को मिलती हैं। वास्तव में शास्त्रों में वे बातें उलझने-उलझाने वाली नहीं होतीं, लेकिन हमारी बुद्धि उतनी खुली नहीं है, उतनी परिष्कृत नहीं है, जो इतनी गहरी बातों को आसानी से समझ जाए।

इस अध्याय का नाम राजविद्याराजगुह्ययोग है, अर्थात् जो सभी विद्याओं में, समस्त ज्ञान में सबसे ऊँचा है। नौवें श्लोक में श्रीभगवान कहते हैं, "अर्जुन! तुम तो कर्म करते हो लेकिन सारे कर्म मेरी शक्ति से होते हैं, मैं कुछ नहीं करता।"

दसवें श्लोक में श्रीभगवान स्वयं को और प्रतिष्ठित करके कहते हैं-

9.10

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः(स्), सूयते सचराचरम्।
हेतुनानेन कौन्तेय, जगद्विपरिवर्तते।।9.10।।

प्रकृति मेरी अध्यक्षता में सम्पूर्ण चराचर जगत को रचती है। हे कुन्तीनन्दन ! इसी हेतु से जगत का (विविध प्रकार से) परिवर्तन होता है।

विवेचन- श्रीभगवान कहते हैं कि "अर्जुन! मेरी अध्यक्षता में यह समस्त प्रकृति चर और अचर, सारे जगत को रचती है। इस हेतु से ही यह संसार चक्र घूमता है। मैं कुछ नहीं कर रहा हूँ, यह समस्त कार्य प्रकृति मेरे नियन्त्रण में, मेरी अध्यक्षता में, मेरी शक्ति से करती है।

मान लीजिये आपको रिलायन्स जिओ का सिम लेना हो तो लेने के लिए आपको अम्बानी जी के पास नहीं जाना पड़ता। यह आपको अपने निकटतम स्टोर से एक साधारण कार्मिक से मिल जाता है तथा आपके मोबाइल में कनेक्शन आरम्भ हो जाता है।

आप कहते हैं कि अम्बानी जी की सेवा प्राप्त कर रहे हैं। वह सिम अम्बानी जी ने विक्रय नहीं किया है किन्तु अम्बानी जी की शक्ति से, अम्बानी जी द्वारा उनके स्टोर में नियुक्त एक कार्मिक द्वारा विक्रय किया गया है। वे रिलायन्स के प्रमुख हैं। अम्बानी जी को तो फिर भी कर्म बाँधेंगे क्योंकि इसमें उनकी आसक्ति है।

दिन के अन्त में, माह के अन्त में तथा तिमाही के अन्त में उनके पास बिक्री के आँकड़े भेजे जाते हैं। उन पर इनका प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार वे उस कर्म से बँध गये।

श्रीभगवान कहते हैं कि "**मैं तो उदासीन के सदृश सारे काम करता हूँ।**

यह सारी प्रकृति मेरे अधिकार से सारा कर्म करती है, किन्तु ये कर्म मुझे नहीं बाँधते। इससे मेरा कोई राग-द्वेष, कर्मफल की वासना, कोई फलेच्छा या कोई आसक्ति नहीं जुड़ी है।"

9.11

अवजानन्ति मां(म्) मूढा, मानुषीं(न्) तनुमाश्रितम्।
परं(म्) भावमजानन्तो, मम भूतमहेश्वरम्।।9.11।।

मूर्ख लोग मेरे सम्पूर्ण प्राणियों के महान् ईश्वररूप श्रेष्ठ भाव को न जानते हुए मुझे मनुष्य शरीर के आश्रित मानकर अर्थात् साधारण मनुष्य मानकर (मेरी) अवज्ञा करते हैं।

विवेचन- श्रीभगवान कहते हैं कि "ऐसा होने पर भी मेरे परम भाव को न जानने वाले मूढ़ व्यक्ति, मनुष्य का शरीर धारण करने वाले मुझ सम्पूर्ण भूतों के महान ईश्वर रूप को तुच्छ समझते हैं अर्थात् अपनी योगमाया से संसार के उद्धार के लिए मनुष्य रूप में विचरते हुये मुझ परमेश्वर को साधारण मनुष्य मान लेते हैं"।

अभी हमने रिलायन्स जिओ के मालिक अम्बानी जी का उदाहरण देखा। एक सत्य यह भी है कि किसी दिन श्री मुकेश अम्बानी जी के मन में आए कि मैं आज जाकर अपने एक स्टोर में बैठ कर वहाँ की गतिविधियाँ देखूँ। सामान्यतः उन्हें ऐसा करने की आवश्यकता नहीं हैं किन्तु यदि वे चाहें तो ऐसा कर सकते हैं।

ईश्वर कण-कण में व्याप्त हैं। वे परम शक्ति हैं। उनसे कोई स्थान या एक छोटा सा अणु का कण भी रिक्त नहीं हो सकता। उस कण-कण में व्याप्त परमात्मा को साधारणतः किसी शरीर को धारण करके मनुष्यों के मध्य घूमने की आवश्यकता नहीं है, किन्तु उस सर्वशक्तिमान के अन्दर इतनी शक्ति है कि अपने भक्तों की इच्छा पूरी करने के लिए वह परमात्मा एक शरीर में अवतार लेकर आ

जाएँ।

'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत,

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्' ।

भक्तों का कल्याण करने के लिए, दुष्टों के विनाश के लिए, धर्म की स्थापना के लिए समय-समय पर वह परमात्मा धरती पर अवतरित होते हैं। कभी वामन के रूप में, कभी वाराह के रूप में, कभी राम के रूप में, कभी कृष्ण के रूप में, कभी बुद्ध के रूप में परमात्मा अवतरित हुये हैं।

श्रीभगवान कहते हैं कि "लेकिन मेरे परमभाव को न जानने वाले अर्थात् जो मेरी शक्तियों से परिचित नहीं हैं, वे मूढ़ हैं"।

एक उदाहरण से हम इसे समझते हैं। विज्ञान में कोयले का मूल तत्त्व कार्बन है तथा हीरे का मूल तत्त्व भी कार्बन ही है। हीरे को तो बहुत मूल्यवान मानकर आभूषणों के रूप में पहना जाता है तथा कोयले को भट्टी में जला दिया जाता है। तत्त्वतः दोनों कार्बन ही हैं। सामान्य व्यक्ति के लिए कोयला भट्टी में जला देने की वस्तु है और हीरा गले में पहनने की वस्तु है, लेकिन एक वैज्ञानिक के लिए वे दोनों कार्बन हैं। उसे ज्ञात है कि जो आज कोयला दिखता है, वह करोड़ों वर्षों में वापस हीरा बन जायेगा और जो आज हीरा दिखता है, वह करोड़ों वर्षों पूर्व कोयला रहा होगा।

यह परमतत्त्व से जानने की बात है।

यहाँ श्रीभगवान ने **मूढ़** शब्द का प्रयोग किया है **जिसका अर्थ है कि कोई व्यक्ति अगर किसी बात को समझने की योग्यता न रखे तो वह उस विषय का मूढ़ होता है।**

वाणिज्य के छात्र को विज्ञान नहीं समझ में आएगा तो वह उस विषय में मूढ़ है। विज्ञान के छात्र को वाणिज्य नहीं समझ आयेगा तो वह उस विषय का मूढ़ है। उस मूढ़ता में ही अनेक व्यक्ति उस परमतत्त्व ईश्वर को सामान्य मनुष्य मान लेते हैं और साधारण मनुष्य को ईश्वर मान लेते हैं। यह मूढ़ता है।

प्राचीन काल में नारदजी को भी भ्रम हुआ, ब्रह्माजी को भी भ्रम हुआ, गरुड़ जी को भी भ्रम हुआ था कि क्या वास्तव में परमात्मा धरती पर आए हैं?

भागवत् जी में एक कथा आती है कि कृष्णावतार के समय समस्त ऋषि-मुनि तथा देवता नित्य श्रीभगवान के दर्शन करने गोकुल आते थे। श्रीभगवान ने माया का थोड़ा सा प्रभाव ब्रह्माजी की ओर कर दिया। जैसे ही ब्रह्माजी की बुद्धि पर माया पहुँची, मूढ़ता आयी, ब्रह्माजी के मन में विचार आया कि क्या वास्तव में अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों के स्वामी एक साधारण से ग्वाले के रूप में गोकुल में ग्वाल-बालों के साथ गैया चराते हैं? गोपियों के साथ लीला करते हैं?

एक दिन जब श्रीभगवान गोपों के साथ गैया चराने के लिए वन में गये थे, ब्रह्माजी ने परीक्षा लेने के लिए सारे गोपों और गौवंश के झुण्ड को लुप्त करके एक गुफा में ले जाकर सुला दिया। वे ब्रह्मलोक गये और वापस आये, तब तक पृथ्वी पर छः माह हो गये। ब्रह्माजी चिन्तित हो गये। वहाँ जाकर देखा कि सारे गोप वहाँ श्रीकृष्ण के साथ घूम रहे हैं। वे सोचने लगे कि श्रीकृष्ण को कैसे पता चला कि मैंने इन्हें किस गुफा में सुलाया था? वे तत्काल उस गुफा में पहुँचे तो देखा कि वे सब वैसे ही सो रहे हैं। तब ब्रह्माजी को बुद्धि आयी कि "अरे! मैं उस परम शक्तिमान परमात्मा की परीक्षा लेने जा रहा था जिनकी शक्ति से मैं ब्रह्माण्ड का निर्माण करता हूँ। मैं उनकी शक्ति को नापने चला था।"

हमें कभी यह भ्रम नहीं होना चाहिए कि हमें कभी मूढ़ता नहीं हो सकती इसलिए नित्य सत्सङ्ग करना आवश्यक है।

9.12

मोघाशा मोघकर्माणो, मोघज्ञाना विचेतसः।

राक्षसीमासुरीं(ञ्) चैव, प्रकृतिं(म्) मोहिनीं(म्) श्रिताः।।9.12।।

(जो) आसुरी, राक्षसी और मोहिनी प्रकृति का ही आश्रय लेते हैं, ऐसे अविवेकी मनुष्यों की सब आशाएँ व्यर्थ होती हैं, सब शुभ-कर्म व्यर्थ होते हैं (और) सब ज्ञान व्यर्थ होते हैं अर्थात् जिनकी आशाएँ, कर्म और ज्ञान (समझ) सत्-फल देने वाले नहीं होते।

विवेचन- श्रीभगवान कहते हैं कि "अर्जुन! वे व्यर्थ आशा वाले, व्यर्थ कर्मों वाले, व्यर्थ ज्ञान वाले विक्षिप्तचित्त अज्ञानीजन ही राक्षसी, आसुरी और मोहिनी प्रवृत्ति को धारण करते हैं। जीवन में जब अज्ञानता की मूढ़ता बढ़ती है, तब उससे जो मोह उत्पन्न होता है, उसके परिणाम बड़े भयङ्कर होते हैं। आसुरी प्रवृत्ति के आश्रित होने के कारण मनुष्य भोगों के आश्रय में चले जाते हैं। व्यर्थ की आशाओं में प्रवृत्ति हो जाती है। जैसे "बस यह हो जाए तो मैं कितना सुखी हो जाऊँगा",

बाल्यकाल में हम माता से कहते थे कि "बस मम्मी! आखरी बार कह रहा हूँ, मुझे यह दिला दीजिये, फिर मैं कुछ नहीं माँगूँगा।"

फिर जैसे ही हमारी वह माँग पूरी होती थी, हम दूसरी वस्तु के लिए हठ करने लगते थे।

एक आशा पूरी हो जाती है तो वह अगली आशा को जन्म देती है। आशा पूरी न हुई तो निराशा को जन्म देती है।

जीवन में किसी का अनुभव ऐसा नहीं है कि आशा की पूर्णता पर सन्तोष आ गया हो। जिसकी कई आशाएँ लगातार पूरी हो जाती हैं, वह स्वयं को सिद्ध मानने लगता है।

हमारे सारे दु:खों का कारण आशाएँ होती हैं। आशाएँ जीवन को बहुत नीचे ले जाती हैं।

जितना जीवन में ज्ञान होगा और ज्ञान का प्रादुर्भाव होगा, उससे बुद्धि का विवेक जागृत होगा। उतना ही व्यक्ति इन आशाओं से दूर होता जायेगा और आशाओं की तीव्रता कम होती जाएगी। जितनी मोघाशा होगी, उतना-उतना उन भोगों की प्राप्ति में दिन-रात गलत कर्मों में लगे रहेंगे। ऐसे व्यक्ति का ज्ञान भी व्यर्थ वाला होता है। उसने जो कुछ पढ़ा है, सुना है, उसका उपयोग वह अपनी आशाओं को पूरा करने के लिए लगाना चाहता है।

रामायण में अरण्यकाण्ड में एक प्रसङ्ग आता है- उसमें एक चौपाई है, जिसके विषय में यदि आपको ज्ञात नहीं है कि वह किसने बोली है तो आपको लगेगा कि वह या तो वशिष्ठ ऋषि ने बोली होगी या वाल्मीकि ऋषि ने या फिर श्रीराम ने बोली होगी।

वास्तव में यह चौपाई शूर्पनखा ने बोली है। शूर्पनखा अपने समय की अत्यन्त सुन्दर स्त्री थी। जब लक्ष्मणजी ने उसके नाक-कान काट दिये तो पहले तो उसने खर-दूषण को मरवाया, उसके दस हज़ार राक्षसों को मरवाया, फिर वह रावण के पास आयी।

रावण उस समय अपने महल में मदिरापान कर रहा था और नृत्य देख रहा था। शूर्पनखा ने बड़े क्रोध से रावण की ओर देखा और कहा-

करसि पान सोवसि दिनु राती।

सुधि नहिं तव सिर पर आराती॥

वह कहती है कि तू दिन भर मदिरा पीता है, दिन भर पड़ा रहता है, तुझे सूचना भी है कि शत्रु तेरे सिर पर खड़ा है?

राज नीति बिनु धन बिनु धर्मा।

हरिहि समर्पे बिनु सतकर्मा॥

अरे! नीति के बिना राज्य और धर्म के बिना धन प्राप्त करने से, ईश्वर को समर्पित किए बिना उत्तम कर्म करने से और विवेक बिना विद्या उत्पन्न करने के परिणामस्वरूप केवल श्रम लगता है, कुछ मिलता नहीं ।

बिद्या बिनु बिबेक उपजाएँ।

श्रम फल पढ़ें किएँ अरु पाएँ॥

संग तें जती कुमंत्र ते राजा।

मान ते ग्यान पान तें लाजा॥

प्रीति प्रनय बिनु मद ते गुनी।

नासहिं बेगि नीति अस सुनी॥

विषयों के सङ्ग से संन्यासी, बुरी सलाह से राजा, मान से ज्ञान, मदिरापान से लज्जा, नम्रता के बिना प्रीति और अहङ्कार से गुणवान शीघ्र नष्ट हो जाते हैं, ऐसी नीति मैंने सुनी है ।

रिपु रुज पावक पाप प्रभु

अहि गनिअ न छोट करि।

हे रावण! शत्रु को, रोग को, पाप को, स्वामी को और सर्प को छोटा नहीं समझना चाहिए।

'अस कहि बिबिध बिलाप करि लागी रोदन करन'

जब शूर्पनखा ने विलाप किया तब रावण ने पूछा कि क्या हुआ? तब उसने पूरी बात बताई।

वह वास्तव में व्यर्थ के व्यक्ति को व्यर्थ का ज्ञान दे रही है अर्थात् मोघज्ञान। उसका उद्देश्य केवल यह है कि रावण जाकर उसका बदला ले।

विचेतसः का अर्थ है जिसका चित्त विक्षिप्त हो गया है, चित्त पर अन्धकार आ गया है।

एक मध्यमवर्गीय पति-पत्नी थे। पत्नी बहुत आशावादी थी। जहाँ जाती, दूसरे का सामान देखती तो सोचती कि मुझे भी यह चाहिए। एक बार वह हठ करने लगी कि मुझे तो डिनरसेट लाना है। पति ने बहुत समझाया पर वह नहीं मानी। अन्ततः पति ने उसे डिनरसेट दिलवा दिया। घर आकर पुनः उस डिनरसेट के रङ्ग को लेकर झगड़ा हुआ तो पति ने क्रोध में आकर प्लेट फेंक दी। फिर उसे बहुत पश्चात्ताप हुआ। इसे विचेतसः कहते हैं।

जब चित्त पर अन्धकार आता है तो मनुष्य को अच्छा-बुरा कुछ समझ नहीं आता है।

भस्मासुर बहुत तेजस्वी राक्षस था। उसने दस हज़ार वर्ष की तपस्या की। इन्द्र, वरुण आदि अनेक देवता आकार पूछते कि तुझे क्या चाहिए? वह कहता कि मुझे शिवजी से मिलना है। अन्त में ब्रह्माजी आये और वे भी निराश होकर वापस चले गये। उसने इतनी घोर तपस्या की, कि अन्ततः शिवजी को प्रकट होना पड़ा।

शिवजी ने प्रकट होकर पूछा, "बोलो, तुम्हें क्या चाहिये?" उसने कहा कि "मुझे आपके समान शक्तिशाली बनना है।" शिवजी ने कहा कि "तुम साधारण मनुष्य हो, तुम मेरे समान शक्तिशाली कैसे बन सकते हो?" वह बोला, "इसलिए आपसे मिलना था।" शिवजी ने कहा कि "तुम कोई हथियार माँग लो।" उसने कहा कि "नहीं! मुझे वरदान दीजिये कि मैं जिसके सिर पर हाथ रखूँ, वह भस्म हो जाये"।

शिवजी ने उसे यह वरदान दे दिया। भस्मासुर मोघाशा के अधीन तपस्या कर रहा था कि मैं अमर हो जाऊँगा। उसे लगा कि दस हज़ार वर्षों की तपस्या के उपरान्त शिवजी प्रकट हुये हैं। अब इनके वरदान की जाँच कैसे करूँ? उसने अपने आस-पास देखा। वहाँ कोई नहीं था। उसने सोचा कि मैं शिवजी के सिर पर ही हाथ रख देता हूँ। यदि यह वरदान सत्य हुआ तो शिवजी भस्म हो जाएँगे और फिर मैं ही शिव हो जाऊँगा।

शिवजी तो अन्तर्यामी थे। उन्हें जैसे ही उसकी इच्छा का भान हुआ, वे भागने लगे। भस्मासुर उनके पीछे भागने लगा। शिवजी क्षीरसागर में विष्णुजी के पास पहुँचे। शिवजी ने उन्हें पूरी बात बतायी तो विष्णुजी ने अपनी माया से भस्मासुर के मार्ग के मध्य में एक सुन्दर नगर की रचना कर दी। भस्मासुर उस नगर की चकाचौंध देखकर रुका। उसने नगर में प्रवेश किया तो देखा कि विष्णुजी मोहिनी अवतार में प्रकट होकर वहाँ नृत्य कर रहे हैं। उसने इससे पूर्व इतनी सुन्दर स्त्री और इतना सुन्दर नृत्य नहीं देखा था। वह

मोहित होकर उस स्त्री की ओर देखने लगा।

मोहिनी ने नृत्य करते-करते उसकी ओर मोहिनी दृष्टि डाली तो वह और अधिक मोहित हो गया। मोहिनी ने उसे नृत्य करने के लिए बुलाया तो उसने कहा," मैं एक योद्धा हूँ, मैं नृत्य नहीं जानता"। मोहिनी ने कहा कि "अरे! मैं अपने लिए पति की खोज में थी और तुम्हें देखकर लगा कि मेरी खोज पूर्ण हो गयी, किन्तु मेरी एक ही सङ्कल्पना थी कि मैं उसी व्यक्ति का पति के रूप में वरण करूँगी, जिसे सुन्दर नृत्य करना आता हो।" भस्मासुर ने मोहवश कहा कि यदि तुम मुझे नृत्य सिखा दोगी तो मैं सीख लूँगा। मोहिनी ने उसे नृत्य सिखाना आरम्भ किया और विभिन्न मुद्राएँ बनाते हुये अन्ततः अपना एक हाथ अपने सिर पर रखा। उसे देख कर भस्मासुर ने जैसे ही अपने सिर पर हाथ रखा, वह वहीं भस्म हो गया।

इस प्रकार ये आशाएँ मनुष्य को भस्म कर देती हैं। हम भी किसी छोटी सी बात के लिए अपना बहुत कुछ दाँव पर लगा देते हैं और बाद में महसूस होता है कि हमने बहुत बड़ी भूल की।

9.13

महात्मानस्तु मां(म्) पार्थ, दैवीं(म्) प्रकृतिमाश्रिताः।
भजन्त्यनन्यमनसो, ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम्।।9.13।।

परन्तु हे पृथानन्दन ! दैवी प्रकृति के आश्रित अनन्य मन वाले महात्मा लोग मुझे सम्पूर्ण प्राणियों का आदि (और) अविनाशी समझकर मेरा भजन करते हैं।

विवेचन- श्रीभगवान कहते हैं कि हे कुन्ती पुत्र! दैवी प्रकृति के आश्रित महात्माजन मुझे सब भूतों का सनातन कारण, नाशरहित अक्षर स्वरूप जानकर अनन्य मन से मेरा भजन करते हैं।

जो दैवीय प्रकृति के आश्रित हैं, जो गीता पढ़ते हैं, सत्सङ्ग करते हैं, विवेचन सुनते हैं, भजन और जप करते हैं, ऐसे व्यक्ति मुझे सम्पूर्ण प्राणियों का आदि कारण व अविनाशी समझकर अनन्य भाव से मेरा भजन करते हैं।

9.14

सततं(ङ्) कीर्तयन्तो मां(य्ँ), यतन्तश्च दृढव्रताः।
नमस्यन्तश्च मां(म्) भक्त्या, नित्ययुक्ता उपासते॥9.14॥

नित्य- निरन्तर (मुझ में) लगे हुए मनुष्य दृढ़व्रती होकर लगन पूर्वक साधन में लगे हुए और प्रेम पूर्वक कीर्तन करते हुए तथा मुझे नमस्कार करते हुये निरन्तर मेरी उपासना करते हैं।

विवेचन- श्रीभगवान कहते हैं कि "हे अर्जुन! ये दृढ़ निश्चय वाले भक्तजन निरन्तर मेरे नाम और गुणों का सङ्कीर्तन करते हैं। मेरी प्राप्ति का प्रयत्न करते हुए तथा मुझे बारम्बार प्रणाम करते हुए सदा मेरे ध्यान में रत होकर अनन्य प्रेम से मेरी उपासना करते हैं। मेरे नाम-गुण का चिन्तन, उसका गायन करते हैं।"

कीर्तन की महिमा अपरम्पार है। **कीर्तन से श्रीभगवान अतिशीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं। कीर्तन श्रीभगवान की प्रकट भक्ति है,** इसलिए वृन्दावन में हर स्थान पर "राधे-राधे" और "गोविन्द-गोविन्द" का कीर्तन ही गूँजता है।

कलियुग केवल नाम आधारा

कलियुग में केवल नामजप और कीर्तन ही ईश्वर प्राप्ति का सबसे सरल उपाय है।

एक बहुत सुन्दर भजन है-

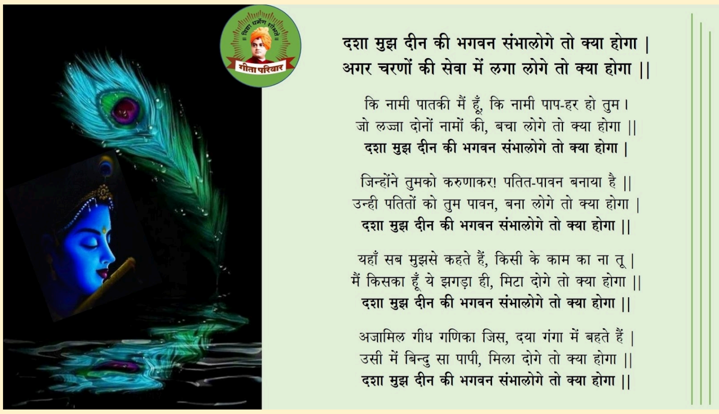

कोई बात नहीं कि मैं संसार का सबसे बड़ा पापी हूँ। यह भी तो सत्य बात है कि संसार के सबसे बड़े पापियों का उद्धार करने वाले आप हैं। यदि आप मेरा उद्धार नहीं कर सकते तो आप क्यों करुणानयन कहलाते हैं?

आपके भक्तों ने ही तो आपका नाम पतित-पावन रखा है। यहाँ मुझे सब कहते हैं कि मैं किसी के काम का नहीं हूँ। एक बार आप मुझे अपना कह देंगे तो फिर मैं सबके काम का हो जाऊँगा। आपने अजामिल, गज, गणिका आदि अनेकों का उद्धार किया है, फिर मैं तो छोटा सा पापी हूँ।

जब आर्तभाव से श्रीभगवान से प्रार्थना की जाती है तो वे प्रसन्न होकर हमारे सब पापों को हर लेते हैं। हमारी बुद्धि को शुद्ध कर देते हैं और हमें अपनी भक्ति प्रदान करते हैं।

श्रीभगवान कहते हैं कि ऐसे दृढ़व्रता व्यक्ति दैवीय हो जाते हैं।

9.15

ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये, यजन्तो मामुपासते।
एकत्वेन पृथक्त्वेन, बहुधा विश्वतोमुखम्।।9.15।।

दूसरे साधक ज्ञान यज्ञ के द्वारा एकीभाव से (अभेद-भाव से) मेरा पूजन करते हुए मेरी उपासना करते हैं और दूसरे भी कई साधक (अपने को) पृथक् मानकर चारों तरफ मुखवाले मेरे विराट रुप की अर्थात् संसार को मेरा विराट रुप मानकर सेव्य-सेवक भाव से (मेरी) अनेक प्रकार से (उपासना करते हैं)।

विवेचन- श्रीभगवान कहते हैं कि हे अर्जुन! दूसरे ज्ञानयोगी मुझ निर्गुण-निराकार ब्रह्म की ज्ञान-यज्ञ द्वारा अभिन्न भाव से उपासना करते हैं। कुछ दूसरे मनुष्य अनेक प्रकार से स्थित मुझ विराट-स्वरूप परमेश्वर की पृथक-पृथक भाव से उपासना करते हैं।

श्रीभगवान ने चौदहवाँ श्लोक भक्तिमार्ग के लिए बोला है और दूसरा श्लोक ज्ञानयोग वाला बोला है।

'एकोऽहं द्वितीयो नास्ति, न भूतो न भविष्यति'

जिनके मन में एकात्मता है। जो मुझे और जीव को पृथक नहीं मानते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता की यह विशेषता है कि संसार में किसी भी अन्य ग्रन्थ में यह भाव मिलना कठिन है। भारतीय संस्कृति के वाङ्मय ग्रन्थों में भी केवल उन्हीं देवी-देवताओं की उपासना की बात है।

श्रीमद्भगवद्गीता एकमात्र ऐसा ग्रन्थ है जहाँ श्रीभगवान चौथे अध्याय के ग्यारहवें श्लोक में कहते हैं-

'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्'।

मेरी उपासना जिस भी नाम से और जिस भी रूप से करना चाहते हो अथवा बिना नामरूप के भी करना चाहते हो, मैं उसी रूप में तुम्हें मिल जाता हूँ।

विभिन्न मनुष्य करोड़ों मार्गों से मेरी उपासना करते हैं तथा सभी मार्गों से मैं ही उनको प्राप्त होता हूँ।

यह बात ऐसे समझी जा सकती है- हम सबको भूख लगती है। भूख सबको एक जैसी ही लगती है। भूख लगने पर जो भोजन खाया जाता है, उससे तृप्ति भी एक जैसी ही होती है, लेकिन भूख लगने पर किसको क्या और कितना खाने पर तृप्ति मिलेगी? यह मात्रा हर व्यक्ति के लिए अलग होती है। कोई एक रोटी में तृप्त हो जाता है और किसी को बारह रोटी भी कम पड़ती हैं। कोई पूरे दिन में एक बार ही भोजन करता है और किसी को दस बार खाये बिना चैन नहीं आता। किसी को मीठा बहुत प्रिय होता है तो किसी को नमकीन अधिक प्रिय होता है।

इसका तात्पर्य यह है कि सबकी भूख एक जैसी है, तृप्ति भी एक जैसी है किन्तु सबको तृप्ति प्रदान करने वाले पदार्थ अलग-अलग हैं। इसी प्रकार सबकी साधना भी एक जैसी है, साधना से मिलने वाला परिणाम भी एक जैसा है, परन्तु साधना के मार्ग और उसकी प्रवृत्ति सबकी पृथक-पृथक है।

श्रीभगवान की पूजा और उसके फल एक ही हैं, लेकिन कोई कीर्तन करता है तो कोई जप करता है, कोई गीता पाठ करता है तो कोई कहता है कि मैं तो सबकी सेवा करूँगा। कोई ध्यान का मार्ग चुनता है।

एक स्थान पर बहुत सारे जीव थे। उनको हाथी का स्पर्श हुआ। जिस जीव को हाथी के पैर का स्पर्श हुआ, उसे हाथी का पैर ही हाथी लगा। जिसने हाथी के पेट को स्पर्श किया, उसे हाथी का पेट ही हाथी लगा। जो हाथी की सूण्ड के पास था, उसे हाथी की सूण्ड ही हाथी लगी और जो हाथी के मस्तक पर जाकर बैठ गया, उसने मस्तक को हाथी मान लिया। वास्तव में वे सब एक ही हाथी को देख रहे थे किन्तु आपस में झगड़ा कर रहे थे और अपने-अपने अनुभव से हाथी का आकार बता रहे थे। देखने की दृष्टि सीमित होने के कारण वे एक ही हाथी का दर्शन पृथक-पृथक रूप में कर रहे थे।

इसी प्रकार परमात्मा भी विराट हैं। हम उन परमात्मा को पूरे रूप में देख या जान सकेंगे, इसकी सम्भावना नहीं है। हम उनके एक भाव को समझते हैं और उसको ही परमात्मा समझ लेते हैं।

आगे श्रीभगवान कर्मयोग की बात करने वाले हैं।

9.16

अहं(ङ्) क्रतुरहं(यँ) यज्ञः(स्), स्वधाहमहमौषधम्।
मन्त्रोऽहमहमेवाज्यम्, अहमग्निरहं(म्) हुतम्॥9.16॥

क्रतु मैं हूँ, यज्ञ मैं हूँ, स्वधा मैं हूँ, औषध मैं हूँ, मन्त्र मैं हूँ, घृत मैं हूँ, अग्नि मैं हूँ (और) हवन रूप क्रिया भी मैं हूँ। जानने योग्य पवित्र, ओंकार, ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद भी मैं ही हूँ। इस सम्पूर्ण जगत का पिता, धाता, माता, पितामह, गति, भर्ता, प्रभु, साक्षी, निवास, आश्रय, सुहृद्, उत्पत्ति, प्रलय, स्थान, निधान (भण्डार) (तथा) अविनाशी बीज (भी मैं ही हूँ)। (9.16-9.18)

विवेचन- श्रीभगवान कहते हैं, हे अर्जुन! क्रतु मैं हूँ, यज्ञ मैं हूँ, स्वधा मैं हूँ, औषधि मैं हूँ, मन्त्र मैं हूँ, घृत मैं हूँ, अग्नि मैं हूँ और हवनरूप क्रिया भी मैं हूँ। श्रीभगवान अलग ही स्वभाव में कुछ कहना चाहते हैं। सबसे पहले हमें इन शब्दों का अर्थ जानना पड़ेगा कि क्रतु क्या होता है और हवन क्या होता है?

वैदिक रीति से जो अग्निहोत्र किया जाता है, उसे क्रतु कहते हैं। स्मार्त रूप से जो किया जाता है उसे यज्ञ कहते हैं।

पितरों को अर्पण किया जाने वाला जो अन्न होता है, उसे स्वधा कहते हैं।

यज्ञ में आहुति के रूप में जो तेल, जौ, छुहारा, जड़ी-बूटी आदि डाली जाती हैं, उन्हें औषधि कहते हैं।

हुतम्, यज्ञ रूप की क्रिया है।

श्रीभगवान कहते हैं कि "यज्ञ में जो घी डालते हैं वह भी मैं हूँ। उसमें प्रज्वलित होने वाली अग्नि भी मैं हूँ। पूर्ण हवन रूप जो क्रिया है, वह भी मैं हूँ।"

श्रीभगवान यहाँ कर्मकाण्ड रूप में आ गए हैं। चौदहवें श्लोक में वे भक्ति मार्ग में थे, पन्द्रहवें श्लोक में वे कर्मयोग में थे और अब सोलहवें श्लोक में वे कर्मकाण्ड में आ गए। श्रीभगवान कहते हैं "सद्स्थानों में मैं ही हूँ। कभी ऐसा नहीं मानना चाहिये कि कर्मकाण्डी को श्रीभगवान नहीं मिलेंगे, ज्ञानमार्गी को श्रीभगवान नहीं मिलेंगे या फिर भक्तिमार्गी को श्रीभगवान नहीं मिलेंगे।

दूसरों को सम्भवतः ऐसे लगेगा, लेकिन मैं सभी मार्गों पर मिलता हूँ।"

9.17

पिताहमस्य जगतो, माता धाता पितामहः।
वेद्यं(म्) पवित्रमोङ्कार, ऋक्साम यजुरेव च।।9.17।।

विवेचन- श्रीभगवान कहते हैं, "हे अर्जुन! मैं ही इस इस सम्पूर्ण जगत का धाता अर्थात् धारण करने वाला, कर्मों के फल को देने वाला, माता-पिता-पितामह सब मैं ही हूँ।" यहाँ कुछ भ्रम होना सम्भव हो सकता है। माता-पिता तो ठीक है, पर श्रीभगवान ने पितामह क्यों कहा? इस विषय में कोई अनुमान लगा सकता है?

श्रीभगवान दादा जी कैसे बन गए? सन्त कहते हैं, हमें उत्पन्न करने वाले तो ब्रह्मा जी हैं, तो ब्रह्मा जी पिता हो गए। अब ब्रह्मा जी को कौन उत्पन्न करता है? वे हैं नारायण! तो अब यहाँ ज्ञात होता है कि पिता के पिता अर्थात् दादा जी और वे हैं नारायण।

इस तरह से वे एक सम्बन्ध से पिता हैं, दूसरे सम्बन्ध से पितामह।

श्रीभगवान कहते हैं कि "जानने योग्य पवित्र ॐकार, ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद भी मैं ही हूँ।"

श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीभगवान ने अथर्ववेद की उपेक्षा की है। वास्तव में वेद चार नही हैं, वेद एक ही है।

यहाँ कोई भी सामान्य व्यक्ति यही कहेगा कि हमें तो पढ़ाया गया है कि वेद चार हैं। वह गलत नहीं बताया गया है पर मूल रूप से वेद एक ही है।

इनमें नियत अक्षरों वाली जो ऋचाएँ या मन्त्र हैं, उन्हें ऋग्वेद कहा गया। वहाँ आठ-आठ, बारह-बारह या तेरह-तेरह मात्राओं के चरण होते हैं। आठ-आठ मात्राओं के चरणों को अनुष्टुप छन्द कहा गया। इस तरह जहाँ नियत मात्राओं के छन्द हैं, उन्हें ऋग्वेद कहा गया।

जो गाई जा सकती हैं, जो छन्दबद्ध हैं, उन्हें सामवेद कहा गया।

जो ऋचाएँ अनियत अक्षरों वाली होती हैं, कोई आठ अक्षरों वाली, कोई ग्यारह अक्षरों वाली तो कोई अट्ठारह अक्षरों वाले चरण भी हैं, इनको यजुर्वेद कहा गया।

जहाँ लौकिक विद्याएँ हैं, जैसे भवन कैसे बनाया जाता है? रथ कैसे बनाया जाता है? अस्त्र-शस्त्र कैसे बनाए जाते हैं? भोजन कैसे बनाया जाता है? आदि, ये सभी चौंसठ कलाएँ सिखाने वाली जो ऋचाएँ हैं, उन्हें अथर्ववेद कहा गया।

श्रीभगवान ने श्रीमद्भगवद्गीता में लौकिक विद्याओं की उपेक्षा कर दी क्योंकि उनकी यहाँ कोई आवश्यकता नहीं है। श्रीभगवान यहाँ

कुछ उच्च स्तर की बात करना चाहते हैं।

9.18

गतिर्भर्ता प्रभुः(स्) साक्षी, निवासः(श्) शरणं(म्) सुहृत्।
प्रभवः(फ्) प्रलयः(स्) स्थानं(न्), निधानं(म्) बीजमव्ययम्।।9.18।।

विवेचन- श्रीभगवान कहते हैं, "हे अर्जुन! प्राप्त होने योग्य परमधाम, भरण-पोषण करने वाला सबका स्वामी, शुभाशुभ देखने वाला, हित करने वाला, सबकी उत्पत्ति, प्रलय का हेतु, सबकी स्थिति का आधार-निधान, अविनाशी कारण भी मैं ही हूँ, लेकिन मैं कुछ भी करता नहीं हूँ।"

हम कहते हैं, "हे भगवान! तुमने मेरे साथ यह क्या किया?" तब श्रीभगवान कहते हैं, "मैंने कुछ नहीं किया। तुम शुभ कर रहे हो, तुम अशुभ कर रहे हो, मैं केवल देख रहा हूँ, मैं उसमें लिप्त नहीं हूँ। मैं सबका कल्याण कर रहा हूँ, परन्तु बदले में मुझे कुछ नहीं चाहिए। सबकी उत्पत्ति, प्रलय का हेतु, स्थिति का आधार-निधान एवं अविनाशी कारण भी मैं ही हूँ।"

9.19

तपाम्यहमहं(वँ) वर्षं(न्), निगृह्णाम्युत्सृजामि च।
अमृतं(ञ्) चैव मृत्युश्च, सदसच्चाहमर्जुन॥9.19॥

हे अर्जुन ! (संसार के हित के लिये) मैं (ही) सूर्य रूप से तपता हूँ, मैं (ही) जल को ग्रहण करता हूँ और (फिर उस जल को) (मैं ही) वर्षा रूप से बरसा देता हूँ (और तो क्या कहूँ) अमृत और मृत्यु तथा सत् और असत् (भी) मैं ही हूँ।

विवेचन- श्रीभगवान कहते हैं कि मैं ही सूर्य रूप से तपता हूँ, मैं ही जल को ग्रहण करता हूँ और मैं ही वर्षा रूप से जल बरसा देता हूँ।

मैं ही अमृत हूँ, मैं ही मृत्यु हूँ, मैं ही सत्य और असत्य भी हूँ। श्रीभगवान कह रहे हैं, "मेरे सिवाय कुछ भी नहीं है।"

इसके उपरान्त हरिनाम सङ्कीर्तन के साथ आज के सत्र का समापन हुआ तथा प्रश्नोत्तर सत्र आरम्भ हुआ।

हरि शरणम् हरि शरणम् हरि शरणम् हरि शरणम् |

हरि शरणम् हरि शरणम् हरि शरणम् हरि शरणम् ||

प्रश्नोत्तर

प्रश्नकर्ता- कुसुम दीदी
प्रश्न- मैंने गीता का सङ्गीतमय पारायण देखा, मुझे बहुत आनन्द आया। मुझे तो ऐसा लगा कि मेरी समाधी लग गई है। मेरी भक्ति श्रवण भक्ति है। मैं यही सोचती हूँ कि मुझे जीवन में गीता जी की प्राप्ति कैसे होगी?
उत्तर- इस बार जो लखनऊ में श्रीमद्भागवदगीता जी का सङ्गीतमय पारायण हुआ है, वह सचमुच ही अद्भुत रहा। वह हम सबके लिए एक नई अनुभूति रही और हम सब उसमें डूब गए।

तेरह सौ सत्तानवें स्थानों पर यह ऑफलाइन और ऑनलाइन (Offline and online) कार्यक्रम हुए हैं। पैन्तीस देशों में, पाँच सौ बहत्तर शहरों में और तेरह सौ सत्तानवें स्थानों पर यह कार्यक्रम हुए हैं।
इस समय भी आकोला, राँची, मुम्बई और अमेरिका में ये कार्यक्रम चल रहे हैं। जोधपुर और बेंगलुरु में भी यह कार्यक्रम चल रहा है। यह श्रीभगवान की अद्भुत कृपा है। इस बार गीता जी के छब्बीस पारायण हुए। गीता जयन्ती के पर्व पर सवेरे छः बजे से अगले दिन साढ़े बारह बजे दोपहर तक गीता जी के ग्यारह पारायण हुए हैं। जिसमें ढाई लाख साधक जुड़े।

हम सभी गीता माता के भक्त हैं। गीता जयन्ती मनाने से अच्छा हमें और कुछ नहीं लगता। आपने इतनी अच्छी तरह से इस पारायण को सुना तो आपको तो वैसे ही गीता जी प्राप्त हो गयी हैं। ऐसे ही आपको गीता जी में अनन्य भक्ति प्राप्त हो, ऐसी मेरी शुभकामना है। आपकी समाधि लग गई इसके लिए आपको बहुत-बहुत बधाई।

प्रश्नकर्ता- रश्मिता दीदी
प्रश्न- वेदव्यास और व्यास देव एक ही हैं क्या?
उत्तर - वेदव्यास और व्यास एक ही हैं। **उनका मूल नाम कृष्ण द्वैपायन व्यास है**। उन्होंने वेदों को चार भागों में विभाजित किया इसलिए उनका नाम वेदव्यास हो गया। उन्होंने वेदों का व्यास किया इसलिए वेदव्यास कहलाए।

प्रश्नकर्ता- विनोद भैया
प्रश्न - अपने विवेचन करते हुए तीन ही वेदों का नाम लिया है, ऋगवेद, यजुर्वेद और सामवेद। क्या अथर्ववेद वेदों में नहीं आता है?
उत्तर - अथर्ववेद भी वेद ही है। श्रीभगवान ने अपने श्लोक में तीन ही वेदों का वर्णन किया है। आगे बीसवें श्लोक में श्रीभगवान ने भी तीन ही वेद लिए हैं।

त्रैविद्या मां(म्) सोमपाः(फ्) पूतपापा,
यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं(म्) प्रार्थयन्ते।

अथर्ववेद में जो ऋचाएँ हैं, वे लौकिक क्रियायों की हैं। जैसे भोजन कैसे बनाना है? रथ, अस्त्र-शस्त्र, दवाई और यन्त्र आदि कैसे बनाना है?
श्रीभगवान ने गीता जी में उसकी उपेक्षा कर दी है और उसकी बात अपने श्लोक में नहीं कही है। बाकी तीन वेदों में उपासना, आध्यात्म और कर्मकाण्ड के विषय में बताया गया है।

प्रश्नकर्ता - पद्मिनी दीदी
प्रश्न - क्या गरुण पुराण वेदव्यास जी ने लिखा है?
उत्तर - गरुड़ पुराण वेदव्यास जी ने नहीं लिखा है। वह भगवान विष्णु के द्वारा गरुड़ जी को दिए हुए उपदेश हैं। गरुड़ जी ने बहुत से प्रश्न पूछे हैं और विष्णु भगवान ने उनके उत्तर दिये हैं। पुराण पुरातन हैं। अनेक महर्षियों द्वारा लिखे गए हैं और व्यास जी से भी बहुत पहले के हैं। ये पुरातन और अनादि हैं। वेदव्यास जी ने भी अट्ठारह पुराणों की रचना की है, ऐसा भी वर्णन आता है। पहले पुराण स्मृति रूप में चलते थे। वेदव्यास जी ने उनका सङ्कलन किया है।

प्रश्नकर्ता - सुजाता दीदी
प्रश्न - मैं बहुत धार्मिक हूँ और श्रीमद्भगवद्गीता गीता में श्रीकृष्ण भगवान बार-बार कहते हैं कि मैं ही सब कुछ हूँ और तुम मेरी शरण में आओ, तो मुझे यह कुछ कम समझ आता है। कृपया मेरी शङ्का का समाधान करें?
उत्तर - आपके ही तरह अनेक साधकों के मन में यह प्रश्न आता है।
इसमें सबसे पहले समझने वाली बात यह है कि महाभारत में जब भी वेदव्यास जी ने यह वर्णन किया है कि श्रीकृष्ण भगवान ने कुछ कहा है तो उन्होंने केशव उवाच, कृष्ण या वासुदेव उवाच लिखा है।

पूरी महाभारत के एक लाख श्लोकों में, केवल भीष्म पर्व में, जहाँ श्रीमद्भगवद्गीता जी के अट्ठारह अध्यायों में, सात सौ श्लोक हैं, वहाँ पर जितनी बार भी श्रीकृष्ण भगवान बोले, उसे वेदव्यास जी ने श्रीभगवान उवाच लिखा है, कहीं भी श्रीकृष्ण उवाच या

केशव उवाच नहीं है।

यहाँ पर श्रीभगवान जो भी बोल रहे हैं वह श्रीकृष्ण स्वरूप में नहीं बोल रहे हैं। वे परमेश्वर के स्वरूप में बोल रहे हैं। वे परमात्मा के स्वरूप में बोल रहे हैं।

इसलिए आप इसे ऐसे समझें कि यदि आपके इष्ट भगवान रामजी हैं तो श्रीराम उवाच और यदि शिवजी हैं तो श्रीशिव उवाच। आपके जो भी इष्ट हैं, इसे उन्हीं के द्वारा कहे गए वचन समझें। वहाँ पर परम पिता परमात्मा बोल रहे हैं। जब भगवान मम् कहते हैं तो यह श्रीकृष्ण की भक्ति नहीं है। आपके जो भी इष्ट हैं, यह उनकी भक्ति है।

यहाँ पर मम् का मतलब है कि आपको अपनी भक्ति को शरीर में नहीं लगाना है बल्कि शरीर से हटाकर अपने भीतर ले जाना है।
श्रीभगवान ने बार-बार यही कहा है कि तुम मेरे ही अंश हो। पन्द्रहवें अध्याय में भी श्रीभगवान ने कहा है।

"ममैवांशो जीवलोके, जीवभूतः(स्) सनातनः।
मनः(ष्) षष्ठानीन्द्रियाणि, प्रकृतिस्थानि कर्षति॥१५.७॥"।

श्रीभगवान कहते हैं कि तुम मेरे से अलग नहीं हो। श्रीभगवान जब अपनी भक्ति को करने को कह रहे हैं तो इसका अर्थ यह है कि हम स्वयं को जानें। स्वयं की भक्ति कर सकें, हमें इस भाव में अपने को लेकर आना है। यहाँ पर श्रीभगवान व्यष्टि निष्ठ होकर नहीं बोल रहे हैं वह समष्टि निष्ठ होकर बोल रहे हैं।

प्रश्नकर्ता- सुजाता दीदी
प्रश्न - सुन्दरकाण्ड के चवालीसवें दोहे में भगवान श्रीराम ने कहा है कि हजारों ब्राह्मणों का वध करने से लगे दोष को भी मैं दूर करता हूँ।

कोटि बिप्र बध लागहिं जाहू। आएँ सरन तजउँ नहिं ताहू॥
सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं॥1॥

मुझे इस दोहे का अर्थ विस्तार से समझाइए? यहाँ पर ब्राह्मणों का वध करने की बात क्यों कही गई है?
उत्तर - इसमें कहीं भी ब्राह्मणों का वध करने की बात नहीं है। भगवान श्रीराम मात्र इतना कह रहे हैं कि सैकड़ो ब्राह्मणों को हताहत करने से जो दोष लगता है, वह भी मेरी भक्ति करने से समाप्त हो जाएगा। यहाँ यह सिर्फ एक उदाहरण दिया गया है। ऐसा नहीं कहा गया कि ब्राह्मणों का वध करो।

नवें अध्याय में भी आगे के श्लोक में यह बात आती है।

"अपि चेत्सुदुराचारो, भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः(स्), सम्यग्व्यवसितो हि सः॥९.३०

यहाँ श्रीभगवान ने कहा है कि कोई सबसे बड़ा पापी हो, वह भी अगर यह व्रत ले ले कि अब मैं पाप नहीं करूँगा और वह श्रीभगवान की भक्ति में लग जाए तो वह साधु माना जाएगा।

यही भगवान राम रामायण में भी कह रहे हैं कि यदि किसी के ऊपर करोड़ ब्राह्मणों का वध करने का भी पाप है। उस पर ब्रह्म हत्या भी लगी हुई है, पर वह मेरी शरण में आ जाए और मैं अब दोबारा पाप नहीं करूँगा, ऐसा व्रत ले ले। ईश्वर भक्ति के अलावा मैं कुछ और नहीं करूँगा, ऐसा शुद्ध विचार बना ले तो उसके सब पाप मैं दूर कर देता हूँ।
यहाँ पर मतलब यह नहीं है कि करोड़ों ब्राह्मणों को मार कर आओ। यह उदाहरण है कि यदि इतना पाप भी तुम्हें लगा होगा तो मेरी भक्ति से दूर हो जाएगा।

प्रश्नकर्ता- गायत्री दीदी
प्रश्न - आपने एक बार बताया था कि एकान्त में रहने से भक्ति होती है, लेकिन जो व्यक्ति एकान्त में पड़ा रहता है, कोई पूजा-पाठ भी नहीं करता तो वह उसकी भक्ति कहलाएगी क्या?
उत्तर - मैंने ऐसा कहा था कि भक्ति एकान्त में होती है, परन्तु यदि कोई एकान्त में जप-तप कुछ नहीं कर रहा और सिर्फ पड़ा हुआ है तो वह भक्ति नहीं है, वह तमस है। ऐसा व्यक्ति तामसिक कहलाएगा। हमें जप-तप करना चाहिए। यदि सबके बीच में कर रहे हैं तो इतनी आवाज में करें कि औरों की शान्ति भङ्ग न हो। हमारे कारण किसी को भी कष्ट नहीं होना चाहिए। यही सच्ची भक्ति है।

प्रश्नकर्ता- दीपांकर भैया
प्रश्न- आप कहते हैं कि अर्जुन एक पुण्यात्मा थे, इसीलिए श्रीभगवान ने उन्हें गीता जी का उपदेश दिया। मेरा प्रश्न यह है कि यदि वह पुण्यात्मा थे तो उन्हें स्वर्ग की प्राप्ति क्यों नहीं हुई?
उत्तर - अर्जुन को भी स्वर्ग की प्राप्ति हुई है। ऐसा आपसे किसने कहा कि उन्हें स्वर्ग नहीं मिला। हाँ! यह सही है कि श्री युधिष्ठिर महाराज को सशरीर स्वर्ग की प्राप्ति हुई।

जब सभी स्वर्ग आरोहण के लिए जा रहे थे तो अन्त में युधिष्ठिर महाराज के साथ में एक कुत्ता आ गया। उन्होंने उस कुत्ते का भी साथ नहीं छोड़ा। वह धर्मराज थे। उन्होंने अन्तिम समय तक अपने धर्म का पालन किया।
जब बद्रीनाथ से आगे चलकर सभी भाई और द्रौपदी स्वर्ग की ओर चले तो युधिष्ठिर महाराज ने सबसे कहा कि अब हम मोह-माया सब पीछे छोड़ आए हैं। कोई भी अब पीछे मुड़कर नहीं देखेगा।

थोड़ा सा आगे चलने पर कुछ हलचल सी महसूस हुई। द्रौपदी ने पीछे मुड़कर देखा जिससे वह वहीं गिर गईं और उनका शरीर वहीं रह गया। उन्हें स्वर्ग की प्राप्ति हुई। द्रौपदी के गिरने की आवाज से सहदेव मुड़े और वह भी गिर गए। नकुल मुड़े और वह भी गिर गए और सबके शरीर वहीं रह गए। अर्जुन भी मुड़े और अर्जुन भी गिर गए। भीम मुड़े और वह भी गिर गए। सिर्फ धर्मराज नहीं मुड़े।

जब धर्मराज आखिर में स्वर्ग के द्वार पर पहुँचे तो एक छोटा सा कुत्ता उनके साथ चल रहा था। देवदूत उनको लेने आए और बोले कि महाराज चलिए, विमान में बैठिए। आप सशरीर स्वर्ग को जाएँगे। युधिष्ठिर महाराज ने कहा कि मैं तो जाऊँगा, यह ठीक है। मेरे साथ यह छोटा कुत्ता भी जाएगा, यह मेरे साथ है। ऐसा मेरा पक्का निश्चय है। देवदूतों ने कहा यह कुत्ता नहीं जा सकता। कुत्ता तो वैसे भी निकृष्ट योनि है। श्वान को निकृष्ट योनि माना गया है। निकृष्ट योनि वाला स्वर्ग नहीं जा सकता।
यहाँ पर धर्मराज युधिष्ठिर ने कहा कि यह मेरी शरण में है। मैं शरणागत का त्याग नहीं कर सकता। यदि आपको मुझे स्वर्ग ले जाना है तो इसे भी ले जाना होगा।

देवदूतों ने कहा कि महाराज! अब आपका सब धर्म हो गया है। अब आपको सशरीर स्वर्ग चलना है। आप ये सब बातें मत कीजिए।
धर्मराज युधिष्ठिर ने कहा कि चाहे आप मुझे नरक ले चलिए, लेकिन मैं शरणागत का त्याग नहीं करूँगा। तब उस श्वान के रूप में साक्षात धर्मराज प्रकट हुए। उन्होंने कहा कि यह तुम्हारी अन्तिम परीक्षा थी। यदि तुम इसमें अनुत्तीर्ण हो जाते तो सशरीर स्वर्ग नहीं जा सकते थे। आपने अन्तिम परीक्षा भी उत्तीर्ण कर ली है इसलिए आप सशरीर स्वर्ग जाएँगे।
इस प्रकार हम देखते हैं कि धर्मराज युधिष्ठिर ने पूरे जीवन भर धर्म का सूक्ष्मता से पालन किया।

महाभारत के शान्ति पर्व में सिर्फ महाराज युधिष्ठिर और भीष्म पितामह का संवाद है। महाराज युधिष्ठिर ने धर्म सम्बन्धी प्रश्न किए हैं और महाराज भीष्म ने उनके उत्तर दिए हैं। महाराज युधिष्ठिर को जो धर्म का ज्ञान है और धर्म के प्रति जो सूक्ष्म दृष्टि है वह अन्य पाण्डवों में नहीं है इसी कारण महाराज युधिष्ठिर को सशरीर स्वर्ग की प्राप्ति हुई।

इसी के साथ प्रश्नोत्तर समाप्त हुए और सुन्दरकाण्ड के पाठ के साथ आज के सुन्दर, सुरुचिपूर्ण और सारगर्भित विवेचन का समापन हुआ।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!

हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !

संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!

Let's come together with the motto of Geeta Pariwar, and gift our Geeta Classes to all our Family, friends & acquaintances

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||

||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||